पथिक पाथेय
(प्रथम भाग)

लेखक
साधु वेश में एक पथिक

प्रकाशक
स्मृति शेष श्री संतराम सूरी नाम रूप में प्रकाशित
पुण्य आत्मा की पावन स्मृति में

मुद्रक
ज्ञान सिक्योरिटी प्रेस प्रा0 लि0
बी0एन0 रोड चौलक्खी लखनऊ।

प्रथम संस्करण 10,000

कार्तिक पूर्णिमा
नवम्बर 1990

मूल्यः 6.00 रू0

संत के वाक्यों द्वारा हम साधकों को यह समझ लेना चाहिये कि हम कष्टों दुःखों को कैसो पार कर सकते हैं।

हम सभी साधक किस प्रकार भले होकर भलाई कर सकते हैं।

हम सभी को सद् बुद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है।

सभी प्राणियों को हम कैसे प्रसन्न रख सकते हैं।

सज्जन कितनी सरलता से शान्ति प्राप्त कर सकते हैं।

शान्त लोग किस प्रकार बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं।

मुक्त पुरूष किस प्रकार औरों को करूणित होकर मुक्ति की युक्ति समझा सकते हैं।

प्रार्थना

हे नाथ अब तो ऐसी दया हो जीवन निरर्थक जाने न पाये।
ये मन न जाने क्या–क्या दिखाये, कुछ बन न पाया मेरे बनाये।।

संसार में ही आसक्त रहकर दिन रात अपने मतलब की कह कर।
सुख के लिए लाखों दु:ख सहकर ये दिन अभी तक यों ही बिताये।।

ऐसा जगा दो फिर सो न जाऊँ अपने को निष्काम प्रमी बनाऊँ।
मैं आपको चाहूँ और पाऊँ, संसार का कुछ भय रह न जाये।।

वह योग्यता दो सत्कर्म कर लूँ अपने ह्रदय में सद्भाव भर लूँ।
नर तन है साधन भव सिंधु तर लूँ, ऐसा समय फिर आये न आये।।

हे प्रभु हमें निराभिमानी बना दो, दारिद्रय हर लो दानी बना दें।
आनन्दमय विज्ञानी बना दो, मैं हूँ पथिक यह आशा लगाये।।

सन्त–वचन–उत्कृट प्यास ही प्रार्थना है। निराश होने के पश्चात् पूर्ण मौन ही एकमात्र प्रार्थना है। जब करने को शक्ति नहीं रह जाती तब प्रार्थना होने लगती है प्रार्थना क्रिया नहीं, अवस्था है।

श्री परमात्मने नमः

(सद्गुरू सन्देश)

स्वतन्त्र्यात् सुखमाप्नोति स्वतन्त्र्यात् लभते परम।
स्वतन्त्र्यान्निवृत्तिं गच्छेत् स्वतन्त्र्यात्परमं पदं ।।

अष्टावक्र गीता

अर्थ—स्वतंत्रता से ही सुख को, स्वतंत्रता से ही परम को, स्वतंत्रता से ही निवृत्ति को, स्वतंत्रता से ही परम पद को प्राप्त होता है।

स्वतंत्रता जीवन का परम लाभ है

हम मानव स्वतंत्र होकर ही जीवन में पूर्णता ला सकते।
सेवा द्वारा ही अहंकार की परतंत्रता मिटा सकते।।
यदि हम व्यसनी पदलोलुप हैं धन मान भाग के भूखे हैं।
दोषों के रहते हम दरिद्र सेवक पद कभी न पा सकते।।
जो सेवक कुछ न चाहता हो जिसको सारा समाज चाहे।
ऐसे परोपकारी जन ही जनता के दुःख हटा सकते।।
हमको अनन्त से शक्ति मिली जो ज्ञान मिला जो प्रेम मिला।
अब इनके सदुपयोग द्वारा अपने को मुक्त बना सकते।।
हम सत्य धर्म के प्रेमी हों जब कहीं राग या द्वेष न हो।
समता सहिष्णुता द्वारा ही सेवा व्रत सदा निभा सकते।।
सेवा से ही सद्गति मिलती सन्मति चिरशान्ति सुलभ रहती।
सेवा द्वारा ही अपने पाप मिटाकर पुण्य बढ़ा सकते।।
तन श्रमी संयमी मन विरक्त हो बुद्धि विवेकी उर उदारं
हम पथिक तभी सेवक होकर सबको सन्मार्ग दिखा सकते।।

1— सत्य को पाने का कोई मार्ग नहीं है। हम सत्य में ही हैं। अपने तक पहुँचने का भी कोई मार्ग नहीं है। हम खाली हों तो सत्य अभी यहीं है। हम उसी में हैं। देह भूमि का भाग है। मन मनन में, चित्त चिन्तन में, बुद्धि विचारों में अहंकार मान के भोग में मग्न है। आकारों को छोड़ते ही केवल अहं ज्ञान ही शेष रहता है। जहाँ अहं ज्ञान स्फुरित हो रहा है वहीं सत्य आत्मा परमात्मा है। परमात्मा को कहीं भी मानकर अहंकार को समर्पित किया जा सकता है। आत्मा से विमुख देहाभिमानी अहंकार रावण के अनुयायी हैं।

ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी।
दशमुख वशवर्ती नर नारी।।

2— जिस प्रकार प्रकाश की सभी कलायें पूर्ण होती हैं उसे पूर्णिमा कहते हैं। ज्ञान की सभी कलायें पूर्ण होने पर गुरू पूर्णिमा मानी जाती है। जिस ज्ञान से सभी सन्ताप मिटते हैं वही गुरू ज्ञान की पूर्णता है।

सत्संग

3— सत्संग किया नहीं जाता, होता है। असत् के पूर्ण त्याग में सत्संग स्वतः होता है। अहंकार असत्संगी है उसी को सत्संगी होना है। जो नित्य है, निरन्तर है, न आता है न जाता है इस ''है'' का संग ही सत्संग समझना चाहिए। जो नित्य प्राप्त है सर्वत्र विद्यमान है इसी में अहं का स्फुरण हो रहा है। अहं के साथ नित्य विद्यमान सत्चित् तत्त्व को जो जानता है वही सत्संगी है। इस सत्संग के लिए कहीं जाने की, किसी श्रम की आवश्यकता नहीं है। जहाँ हम हैं वही सत् है, जहाँा हमारा या मेरा की प्रतीति है वहीं असत् संग है।

जो नित्य सुलभ सत् है, आसान नहीं पाना।
आसान भी इतना है, बस पर्दा ही हटाना।।

यह अहंकार पर्दा, अपना ही बनाया है।
अधिकार नहीं जिस पर, उसको ही अपना माना।।

हम विमुख भले ही हों, प्रभु दूर नहीं हमसे।
संभव है इस अज्ञान को गुरू ज्ञान से मिटाना।।

यह अहंकार कर्ता बन, भोगता है सुख दुःख।
पर सत्य नित्य चिन्मय, आना न कहीं जाना।।

सब खोज ही गलत है, अपने को जानना है।
हम खोजते थे जिसको, अपने में ही पहिचाना।।

यह पथिक चलते—चलते, इस दर पे आ गया है।
यह द्वारा आखिरी है, है आखिरी ठिकाना।।

4— विनाशी के चिन्तन—मनन एवं संयोग—भोग से, जो नित्य निरन्तर है उसके योग की विस्मृति हो रही है। जो बिना श्रम के अपने आप में ही अनुभूत हो उसे परमात्मा कहते हैं। यह सत्य प्रतिक्षण के पीछे विद्यमान है। खोजना नहीं है। चाह—रहित होकर इसका अनुभव करना है।

5— संसार में अपना कुछ नहीं है सब परमात्मा का है। हम परमात्मा के हैं, तब हमें कुछ भी नही चाहिये।

6– सब दुःखों की जड़ ममता है अतः ममता त्यागकर अपने ज्ञान 'हम' में बुद्ध को स्थिर करो।

7– अपने चेतन स्वरूप को भूलकर रूप में आसक्त न बनो।

8– प्रति पल आनन्द का अनुभव करो। चंचलता आते ही शून्य आकाश को देखो या पलक खोलो और बन्द करो।

9– जब भी कोई संकल्प उठे तब देखों कि वह यदि अपने सुख के लिए है तब तो भोग है यदि दूसरों के सुख के लिए है तब पुण्य और दूसरों के हित के लिए है तब धर्म है।

10– किसी वस्तु व्यक्ति को अपना मानने से और सुखद मानने से आसक्ति होती है। अपना न मानकर परमात्मा से मिला हुआ जानने से आसक्ति मिट जाती है।

11– आसक्ति के रहते तीर्थ, जप, पूजा–पाठ से सुख मिलता है, शान्ति नहीं मिलती।

12– भूमि, भवन, धन, परिवार आदि छोड़ने से आसक्ति नहीं मिटती। ममता छोड़ने से आसक्ति मिट जाती है।

13– अपने सुखद स्वरूप को सुलभ देखो। ''हम'' कहो और उसी में बुद्धि ठहराओ। ''हम'' ज्ञान स्वरूप है। ''हम'' के साथ 'हमारा' याद आना ही माया है।

14– तुम जहाँ हो वहीं परमात्मा है, सत् चेतन परमात्मा के बिना तुम कुछ हो ही नहीं सकते।

15– तुम जहाँ हो, जैसे हो, उसी में सन्तुष्ट रहा यही चाह–रहित होना है।

16– चेतन आनन्दमय है, जीव सुखमय है। चित्त–रहित चेतन ही आत्मा है। दृश्याकार चेतना ही मन है। आत्मा चेतनामय है।

17– चेतन आत्मा जब मनोमय है तब भोग होता है। जब मन आत्मामय होता है तब योग होता है।

18– ज्ञान स्वरूप का बोध होना ही अज्ञान का अन्त है, अपने होने का निरन्तर बोध ही आत्मज्ञान अथवा ध्यान है।

19– अनजाने की प्रतीक्षा में बैठे रहना ही ध्यान है।

20– चेतना ही बुद्धि के जड़त्व को पार कर स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम ज्ञान के रूप में प्रगट हो रही है।

21– यह अहंकार ममता, ईर्ष्या, द्वेष आदि महारोगों को ढो रहा है, दोषों का वाहन बन रहा है।

22– काँटों में रहकर फूल की तरह खिलो, यही साधना है।

23– प्रतिकूलता दीखने पर कोई प्रतिक्रिया न होने दो क्योंकि जो कोई प्रतिकूल है वह देह के प्रति है, तुम्हारे प्रति नहीं है।

24– केवल ज्ञान में तृप्त रहो। जो सत्य मैं स्वयं हूँ उसे पाने का कोई मार्ग नहीं है। मैं ज्ञान स्वरूप चेतन हूँ यही मनन करो।

25– जीवन में किसी को सुखदाता या दुःखदाता मानना अज्ञान है।

26– सुखदाता मानने से रागासक्ति बनी ही रहेगी और दुःखदाता मानने से, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निन्दा आदि दोष रहेंगे।

27– मन से मानने में ही बन्धन है। अपना कुभ्छ न मानना मुक्ति है।

28– जिसे हम चाहते हैं वही सुख है और जिसे हम नहीं चाहते वही दुःख है। जितनी देर जो कुछ अनुकूल होता है वही सुखदाता है और जब प्रतिकूल दीखता है, तो वही दुःखदाता है।

29– अपने से भिन्न कहीं सुख मानना अधर्म है। रामायण में कहा है ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी।'' जीव सुख स्वरूप है इसलिए अपने को सुख स्वरूप जानना ही धर्म है। दूसरों को सुख देना धर्म नहीं, पुण्य है, दुःख देना पाप है।

30– सन्तोष ही परम लाभ है तथा विचार ही परम ज्ञान है।

31– परतन्त्र न रहना ही सर्वोपरि सिद्धि है। स्वतन्त्रता में ही जीवन की सार्थकता है। जब तक तुम किसी दूसरे से कुछ भी चाहते हो तब तक परतन्त्र हो।

32– जब तक तुम मन की मानोगे तब तक शान्ति, मुक्ति तथा भक्ति कदापि नहीं मिलेगी।

33– शान्त रहना है तो कुछ चाहो ही नहीं।

34– जब तक तुम अशान्त, भयातुर, चिन्तित एवं दुःखी हो तब तक असत्संगी हो।

35– जिस प्रकार अग्नि काष्टमय है लेकिन काष्ठ आदि नहीं है, इसी प्रकार गुरू तत्त्व देहमय हो सकता है परन्तु देह नहीं होता। आकार सदा नहीं रहता, बदलता रहता है, निराकार तत्त्व नहीं बदलता। गुरू तत्त्व का दर्शन ज्ञान में सम्भव है।

36– अपने चेतन स्वरूप का बार बार स्मरण करो। प्रायः देह का, जाति का, नाम रूप का ही स्मरण रहता है।

37– अहं में आत्मा को, आत्मा में अहं स्फुरण को ध्यान से अनुभव करो।

38– अवकाश मिलते ही नेत्र बन्द करके शान्त, शिथिल होकर भीतर देखो, तभी आनन्द का स्त्रोत मिलेगा। अपने चैतन्य में स्थिर होने में ही आनन्द है।

39– परमात्मा को, आनन्द को पाना नहीं है, प्रत्युत जानना है। खोजना नहीं है–पहिचानना है।

40– वर्तमान में ठहरो, वहाँ न विचार है न वासना है। उसी शून्य में पूर्ण का बोध होता है।

41– सजग रहो, जहाँ तुम हो वहीं परमात्मा है।

42– सब ओर से सत्‌चित्‌ आनन्द ही तन, मन, बुद्धि, अहंकार को घेरे हुए है। तीन महीने अभ्यास के बाद अनुभव होगा।

43– ज्ञान को, चेतन को किसी पदार्थ से न ढकने दो।

44– चेतन आत्मा ही तो सत्‌ है अतः सत्संग सदा सुलभ है।

45– आत्मा ही परम तीर्थ है। शान्त–मौन होकर चेतना में मन–बुद्धि स्थिर करना ही तीर्थ–सेवन है।

46– एकान्त में परमात्मा को विद्यमान स्मरण करो।

47– योगी जन चिद्‌घन की ही उपासना करते हैं।

48– मन की न मानों, मन को अपना न मानों। प्रभु की मर्जी में सन्तुष्ट रहो। कल्पना के जाल से मुक्त रहो।

49– अहं के आकार तुम्हारे द्वारा निर्मित हैं इन्हें ज्ञान में देखो।

50– एक घण्टा मौन–शान्त बैठने का नियम बना लो। कुछ देखने की इच्छा न करो। स्वतः ही जो है उसका अनुभव करो।

51– स्मरण करो, देह के भीतर बहुत बड़ा कार्य परमात्मा की शक्ति से हो रहा है। माँगना कुछ नहीं है। मिले हुए को समझना है।

52– चेतना की निरन्तर अनुभूति उपासना है।

53– सत्य आत्मा की विस्मृति केवल स्मृति से ही दूर हो सकती है।

54– प्रत्येक घटना, सम्बन्ध को मुर्दा होकर देखो।

55– निन्दा–स्तुति द्वन्द्वों में शान्त रहो। उत्तेजित न हो जाओ, कुछ बनो ही नहीं।

56– तटस्थ साक्षी भाव – अस्पर्श भाव संयम है।

57– चेतना से अधिक अपने पास कुछ भी नहीं है। परमात्मा इतना अभिन्न हे कि आँख खोलते ही दूर हो जाता है।

58– निन्दक, दोषदर्शक से घृणा न करो, दया करो।

59– किसी से धन तथा मान या सुखोपभोग पाने की इच्छा न करो। इच्छायें पराधीन बनाती हैं। जो अपने चेतन स्वरूप में स्थित है, शान्त है वही पराधीनता से मुक्त रहता है।

60– अनेक पुस्तकों के अध्ययन से ही नहीं, प्रत्युत अपने जीवन के अध्ययन से आत्मनिरीक्षण से सम्यक्‌ आत्मज्ञान प्राप्त होता है।

61– जहाँ प्रेम है वहाँ कहीं अशान्ति की, दुःख की परिस्थिति नहीं आती।

62– प्रेम की पूर्णता में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, निन्दा को स्थान नहीं मिलता।

63— प्रेमी वही जो अपने प्रेम से तृप्त, सन्तुष्ट रहता है। वह प्रेमपात्र के कृत्यों को नहीं देता। प्रेम सत्य है, आनन्द है, पवित्र है, सुन्दर है। प्रेम बढ़ता ही रहता है, कभी घटता नहीं।

64— प्रेम परमात्मा है। जिससे प्रेम है वह पदार्थ है। प्रेम तो विनाशी पदार्थों में, देह में अविनाशी चेतन को ही देखता है।

65— चेतन स्वरूप आत्मा से प्रकाशित अनित्य देह को चाहना काम है। विनाशी देह में अविनाशी चेतन ही आत्माराम है। मन ठहरता है तब आत्माराम है, जब चंचल होता है तब संसार है। प्रेम से तृप्त प्रेमी पल–पल के पीछे आनन्द का स्मरण करता है।

66— मैं यह नहीं हूँ, जो प्रतीत होता है, जो मिला है वह अपना प्रेम नहीं है यह जान लेना प्रेमी का ज्ञान है। अहंकार अज्ञान में है, प्रेम तो ज्ञान में है। काँटों में रहकर फूल की भाँति खिले रहना ही प्रेमी हृदय के लक्षण हैं, क्योंकि प्रेम आनन्दमय परमात्मा को जानता है और सब में देखता है।

67— सत्संग में सत् चर्चा सुनने का लाभ यही है कि श्रोता मोह, लोभी, काम, क्रोध से मुक्त हो जाये लेकिन प्रायः श्रोता जन वक्ता को ही भगवान मानकर मोही, लोभी, अभिमानी बने रहते हैं।

68— वक्ता में भगवान को मानना–जानना तो बहुत शुभ, सुन्दर है। उसे भगवान से उत्त मिलेगा लेकिन देह को भगवान मानने वाले को मदुःखी होना पड़ेगा। सत्य, प्रेमी श्रोता वही है जिसे सुनने की जरूरत न रहे।

69— प्रेमी साधक समर्पण भाव से जीता है, सारी चिन्ता प्रभु पर छोड़ देता है।

70— प्रेमी सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाता है। आनन्द का ही स्मरण करता है।

71— जगत् में जो मिलेगा वह कभी छूटेगा, सत् परमात्मा आत्मा तो अभी निरन्तर मिला हुआ है। जो दूसरे रूप पर मोहित होता है वह अपने सत्स्वरूप को भूला हुआ है।

72— समर्पण में ही प्रेम पूर्ण होता है।

73— अहं ज्ञान मेरा के आकरों से आच्छादित है, अहं के भीतर सत्य भरपूर है। शान्त, शून्य चित्त ही दर्शन का द्वार है।

74— जब कभी अकेले होने का अवसर मिले तब शान्त–मौन रहो, कुछ न करो। जो भीतर–बाहर हो रहा है उसे ध्यान से देखो।

75— प्यासे की तरह सत्य–बोध की प्रतीक्षा करो तब शक्ति स्वयं सत्य को खोज लेगी। स्वयं प्रेम होकर रहो। प्रेम चाहो नहीं। सत्य आत्मा ही प्रेम स्वरूप है।

76— जहाँ तक भय, चिन्ता, अशान्ति, दुःख है वहाँ तक अविनाशी सत् चिदानन्द में बुद्धि स्थिर नहीं होती।

77— जो कुछ भी सुखद प्रतीत होता है उसी कारण से दुःख आता है। जो किसी से सुख नहीं चाहता है अथवा कुछ नहीं चाहता उसकी स्वतंत्रता अनन्त हो जाती है।

78— जो अपनी देह को अपना रूप मानता है वह श्रद्धालु देह को गुरू मानेगा। वह देह की पूजा—उपासना करेगा। लेकिन निष्काम सेवा, उपासना से बुद्धि शुद्ध होने पर गुरू के निराकार ज्ञान स्वरूप का बोध होने पर उसकी उपासना परमात्मा में ही पूर्ण होगी।

79— साकार देह से उपासना का आरम्भ होता है। निराकार स्वरूप में उपासना पूर्ण होती है।

80— देह को गुरू मानना अज्ञान में ही सम्भव है। गुरूदेव की देह भी उसी प्रकार प्रिय होती है जिस प्रकार प्रकाश का माध्यम बल्ब होता है, बल्ब फ्यूज हो जाता है।

81— कोई भी साधक चाहे जितने वर्षों से सत्चर्चा सुनरहा हो, जब वह दुःखी होता है, चिन्तित होता है, भयभीत होता है, तो उसे जानना चाहिए कि मैं असत्संगी हूँ। सत् के संग में भय, चिन्ता अशान्ति दुःख को स्थान ही नहीं मिलता। संतसंग से सुलभ विवेक का आदर न करने वाले विद्वान भी कर्त्तव्यविमुख, लोभी, मोही, ईर्ष्यालु, क्रोधी, हिंसक बने रहते हैं। आत्मा के अज्ञान में ही समस्त पाप, दोष, अपराध बनते रहते हैं। आत्मा के ज्ञान में ही जाग्रत रहकर दोषों से मुक्ति मिल सकती है।

82— अपना कुछ न मानो, कुछ न चाहो तभी सत्संग है, प्रेममय, शान्तिमय, आनन्दमय आत्मा ही तो है। केवल 'हूँ' का स्मरण रहे, कुछ याद न आये आत्मभाव है। ब्रह्मही अहं के रूप में प्रकट हो रहा है। बुद्धि और मन के साथ विनाशी नाम रूपों को अपना मानने से अहं के आकार बन जाते हैं।

83— अहं ज्ञान में कुछ भी जब मेरा शेष नहीं रहता यही मुक्ति है। मन का मनन न रहे, बुद्धि में विचार न रहे तब चेतन आत्मा ही शेष रह जाता है। शान्त, मौन होकर मन को देखो तब केवल चेतन स्वरूप ही शेष रहेगा। केवल चेतन का ध्यान ही मन का विश्राम है।

84— अपने लिए योग, और भोगी अहंकार के लिए संयोग चाहिए।

85— मैं चेतन आत्मा परमात्मा में ही हूँ, बार—बार मनन करना चाहिए।

86— प्रेममय, शान्तिमय, आनन्दमय चेतन ही आत्मा है।

87— महत्वकांक्षा के कारण अनेक मान्यताओं से अहंकार आबद्ध है और अनेक विकारों, दोषों का बोझा ढोते हुए परतंत्र है। जो कुछ नहीं बनता, कुछ नहीं चाहता, कुछ नहीं करता, सुखी—दुःखी, शान्त—अशान्त नहीं होता वही स्वयं में प्रतिष्ठित सत्य का अनुभव करके स्वतंत्र परमानन्दमय होता है।

88— कामी अंधे की भाँति रहता है,

क्रोधी बहरे की भाँति रहता है,

लोभी गूँगे की तरह रहता है,

मोही दलदल से शक्ति, सम्पत्ति, समय का दुरूपयोग होता रहता है। दोषों से मुक्त होने पर ही सद्गति, परमगति, शान्ति सुलभ होती है।

89— प्रेम से अपने स्वरूप में तृप्त, सन्तुष्ट श्रद्धावान ही अनासक्त रहकर सुख—दुःखादि द्वन्द्वों से मुक्त रहता है।

है उस महान को नमस्कार।।

जो केवल परमानन्द रूप है जिसका कण—कण में निवास।
उसको ही सब जग रहा खोज, जिसका यह जगमग चिद्विलास।।
उस शक्तिमान को नमस्कार।।

जिसकी विभुता इतनी विशाल, बसता है उसमें शून्य व्योम।
जिसमें रहते पृथ्वी सागर, जिसमें चलते हैं सूर्य, सोम।।
उस प्रकृतिप्राण को नमस्कार।।

जो एक प्रेम के भाववश, पाते जिसको प्रेमी प्रवीन।
आते रहते जिसके सम्मुख, नीचातिनीच दीनातिदीन।।
उस दयावान को नमस्कार।।

जिसको कहते हैं दीनबन्धु, जो दुःखियों की सुनता पुकार।
जिसकी महिमा अतुलित अनन्त, जिसका चहुँदिशि से खुला द्वार।।
उस गुणनिधान को नमस्कार।।

जिसकी इतनी है सरल प्राप्ति, मिल सकते हैं जो सभी ठाम।
भक्तों के ही भावानुसार, दर्शन देते आनन्दधाम।।
उसके विधान को नमस्कार।।

जो जीवन का निर्मल प्रकाश, जिससे मिटती है भूल–भ्रान्ति।
गल जाता है देहाभिमान, मिलती है पावन परम शान्ति।।
उस दिव्य ज्ञान को नमस्कार।।

जिसके बल से अज्ञेय तत्त्व अनुभव होता यद्यपित अरूप।
जिस बल से वह उचिन्मय, अचिन्त्य, चिन्तन में आता जिन स्वरूप।।
उस सतत ध्यान को नमस्कार।।

बढ़ती जिससे अनुरक्ति भक्ति, होता जिससे परमानुराग।
ऐसा जिसका सुन्दर प्रभाव, हो जाय पथिक में मोह त्याग।।
उस सत्य गान को नमस्कार।।

सद्गुरू–स्तुति

हे सद्गुरू तुम परम हितैषी तुमसे ही कल्याण हमारा।
तुम्हें न पाकर व्यर्थ चला जाता मानव का जीवन सारा।।

परम सत्य हे नित्य युक्त हे शुद्ध बुद्ध हे मुक्त महात्मन्।।
मन दे पाये जो तुमको ही उसका सफल हुआ मानव तन।।
बुद्धि योग जब तुम देते हो तब होता है जीवन दर्शन।
ज्ञान दृष्टि तुमसे ही खुलती तभी सुलभ होते आनन्दघन।
कितनों ने ही सीख लिया मर कर जीने का मन्त्र तुम्हारा।।

नित्य अनेकों मुरझाये मुख खिलते देखा तुमको पाकर।
सदा पीड़ितों की पुकार पर रहे दौड़ते कष्ट उठाकर।
जो न कहीं सुख देख मिला वह देखा श्रीचरणों में आकर।
जो न कभी हो सका वही हो गया तुम्हारा ध्यान लगाकर।
अभय कर दिया उसको जिसने कभी हृदय से तुम्हें पुकारा।।

मुमको मैंने दीनों दलितों की कुटिया में जाते देखा।
अपनी दिव्य शक्ति से उनके भीषण कष्ट मिटाते देखा।

कहींअश्रु से गीली पलकें स्वामिन् तुम्हें सुखाते देखा।
जो कि तुम्हें करना था उसमें कभी न देर लगाते देखा।
तुमने उसकी सुनी दयामय जिसको सबने ही दुत्कारा।।

सदा सहज निष्काम भाव से तुमने पर उपकार किया है।
आत्मतृप्त रहकर करूणावश प्राणिमात्र को प्यार किया है।
है संघर्षातीत सजग रह षट रिपु का संहार किया है।
शरणागत को मोह सलिल में धसते–धसते पार किया है।
दुस्तर मायाग्रस्त जीव को नाथ तुम्हीं से मिला किनारा।।

हे अभेद द्रष्टा मंगलमय शोक विनाशक हे विज्ञानी।
हे दुःखभंजन जन–मन–रंजन नित्य सखा श्रद्धेय अमानी।
अतुलित प्राणशक्ति से पूतिर गुणमन्दिर हे अद्भुत दानी।
तुमसे ज्ञान ज्योति पाते हैं हम जग में तमवेष्ठित प्राणी।
सदा अशक्त बद्ध पीड़ित को दिया तुम्हीं ने शक्ति सहारा।।

वीतराग हे परम तपस्वी नित्य समाहित चित्त धीर तुम।
शिव सुन्दर सत्य के सम्मिश्रण हरते भव की विषम पीर तुम।
पावन तप के ओज तेज से दीप्तिमान निर्दोष वीर तुम।
हे संदर्शक परम तत्त्व के चलते तम का हृदयचीर तुम।
पथिक हृदय को तुमसे मिलती दिव्य प्रेम की अविरल धारा।।

सन्त–वचन–जिस साधक में दया, उदारता, क्षमा, सहनशीलता, प्रीति, विवेक, दैवी वृत्तियों की प्रधानता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि आसुरी वृत्तियाँ नहीं आने पातीं यही भगवान की जय है। परमात्मा अपने ज्ञानस्वरूप से सबके एकमात्र परम गुरू हैं। गुरू ज्ञान प्राप्त करने के लिए सात्विक श्रद्धा परमावश्यक है। गुरूतत्त्व, देहतत्त्व से भिन्न है। गुरूतत्त्व अविनाशी है, देह विनाशी है।

लिये चलो सत् पथ में शक्तिमान लिये चलो।
अघः पतित जीवन को हे महान लिये चलो।।

र लो हे ज्योतिर्मय मेरा अज्ञान तिमिर,
जिससे शुभ गति मति हो चंचल चित्त हो सुस्थिर।
देकर हे करूणामय दिव्य ज्ञान लिये चलो।।

मिट जायें अन्तर के सब दुर्दमनीय दोष,
प्रभु–प्रदत्त सद्गुण से हो मम निष्कलुष कोष।
मिल जाय हमको भी प्रेम दान लिये चलो।।

वह बल दो जिससे मैं तृष्णा को सकूँ त्याग।
जग के नश्वर सुख में रह जाये कुछ न राग।
उसी तरह जैसा कुछ हो विधान के लिये चलो।।

हे मेरे जीवनेश तुम से ही है पुकार,
अब तो जिसे भाँति बने भवदुःख से करो पार।
पथिक पूर्व पापों पर दो न ध्यान लिये चलो।।

सन्त–वचन–मानव वही है जो कुछ जानता भी है और मानता भी है। सभी दुर्बलताओं की निवृत्ति मानव जीवन की माँग है।

मानव हो जाओ सावधान ।।

जो कुछ दिखता है दृश्य जगत्, इसमें ही तुम जाना न भूल।
जिस सुख के पीछे दौड़ रहे, वह निश्चय ही है दुःख का मूल।
दिखता उसको ही जिसे ज्ञान।। मानव0।।

संघर्ष कलह का कारण है, यह ऊँच–नीच की भेद–दृष्टि।
तुमने ईश्वर की दुनिया में रच ली है अपनी क्षुद्र सृष्टि।
जिसका कि तुम्हें मिथ्याभिमान ।।मानव0।।

कुछ पद पाकर मद आ जाता, होने लगती निज अर्थपूर्ति।
परहित तो वह कर पाते हैं जो होते सच्चे त्यागमूर्ति।
अब देखो तुम किनके समान ।।मानव0।।

प्रभुता पाकर भोगी न बने ऐसे भी जग में पुरूष वीर।
देखो उनको उनसे सीखो, वे कितने हैं गम्भीर धीर।
यदि तुम भी हो कुछ बुद्धिमान ।।मानव0।।

है शक्ति जहाँ तक भी तुममें तुम पुण्य करो या पाप।
तुम देव बनो या दानव हो, लो सुखप्रद वर या दुःखद शाप।
बनलो कठोर या दयावान उ ।।मानव0।।

दुःख बोकर दुःख ही काटोगे बच सकते केवल सुख बोकर।
जो कुछ दोगे वह आयेगा, कितना ही गुना अधिक होकर।
है अटल प्रकृति का यह विाान ।।मानव0।।

तुम अतिशय सरल विनम्र बनो, समझो न किसी को तुच्छ नीच।
कटुता कर्कशता निर्दयता लाओं न कहीं व्यवहार बीच।
परहित का रखो सदा ध्यान ।।मानव0।।

जो संग सदा न रह सकेगा, अब उसका तुम दो मोह छोड़।
जो तुमसे भिन्न न हो सकता, ऐ पथिक उसी से स्नेह जोड़।
इस त्याग प्रेम का फल महान ।।मानव0।।

अज्ञान विनाशक गुरू वाक्य

साधु वेष में इस पथिक को परमार्थ सिद्धि के लिए सन्तों से मिले हुए गुरू वाक्य नित्य सहायक हैं, अज्ञान विनाशक हैं। वैसे तो इन वाक्यों को बालक भी पढ़ सकते हैं, लेकिन विचार करने के लिए सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि की आवश्यकता है ओर परम सत्य में ठहरने के लिए परम ज्ञान की अपेक्षा है।

1— सन्तों ने समझाया है कि जिसे परम ज्ञान कहते हैं उसी का नाम परमात्मा है, ब्रह्म है, भगवान है। वह अखण, अनन्त है, नित्य है, निरन्तर है, इसीलिए यह परमात्मा अभी है, यहीं है, इसी को भगवान ने अहमात्मा कहा है जो सभी प्राणियों का जीवन है, सभी पदार्थों में सत्त रूप से विद्यमान है।

2— इसी के द्वारा प्रत्येक कण में शक्ति है तथा प्रत्येक क्षण के साथ इसी से गति है। इसी में अहं ज्ञान स्फुरित हो रहा है।

3— यह सत् परमात्मा निरन्तर है इसीलिए इसे पाने का कोई मार्ग नहीं है, क्योंकि यह तो है ही। मार्ग उसका होता है जिससे भिन्नता होती है जो अपने से दूर होता है। जब हमें अपने को पाने के लिए कहीं चलना ही नहीं है क्योंकि हम तो निरन्तर हैं तब परमात्मा को पाने के लिए कहीं जाने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जहाँ हम हैं वहीं परमात्मा है।

4— कुछ साधक कहते हैं कि जब परमात्मा वहीं है जहाँ हम हैं तब दीखता क्यों नहीं? इसका उत्तर सन्त देते हैं कि तुम इसी सत् चेतन के द्वारा ही तो सब कुछ देखते हो, सब कुछ करते हो, भोगते हो। यह परमात्मा है तभी तो तुम हो।

5— अज्ञान में तुम्हें अपने होने का ही ध्यान नहीं रहता, क्योंकि तुम्हारा ज्ञान स्वरूप मेरा या मेरी अनेक मान्यताओं, स्वीकृतियों से ढका हुआ है।

6— अभी विचार करो, और कुछ देर कुछ भी अपना न मानो, किसी वस्तु की, व्यक्ति की याद न आने दो तब देखो तुम कौन हो? मेरा—मेरी के हटते ही तुम्हारा कोई नाम या कोई रूप या कोई सम्बन्ध रह ही नहीं जाता।

7— मेरा—मेरी मानते ही तुम माता—पिता, भाई—बहिन, पति—पत्नी, निर्धन या धनी, ऊँचे या नीचे, बड़े या छोटे, जो कुछ भी बनते हो वह किसी न किसी संग से, अपने को कुछ मान लेने पर ही बनते हो। कोई भी संग

न रहने पर तुम क्या हो, इसे ज्ञान में देखो। तब तुम केवल ज्ञान स्वरूप ही शेष रह जाते हो।

8— समस्त बन्धन किसी न किसी संग के कारण ही रहते हैं। इसी को सन्त ने समझाया है कि —

9— असंग होते ही मुक्ति मिल जाती है।

10— परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव होते ही भक्ति मिल जाती है।

11— चाह को छोड़ते ही शान्ति सुलभ दीखती है।

12— सन्त समझाते हैं कि तुम जो कुछ आँखों से देखते हो उसके लिए जो कुछ सुनते हो मन से वही मान लेते हो। यह मान्यता से ही अहं के आकार बन गये हैं, मान्यता की सीमा में (परिधि) में जो जी रहा है उसी को अहंकार कहते हैं।

13— अहंकार ही कर्ता बनता है। कर्ता बनने के कारण ही इसे कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

14— यह अहंकार ही जिसे सुखद मानता है उसी से राग हो जाता है और जब दुखद मानता है तब उसी से द्वेष हो जाता है। राग—द्वेष ही बन्धन का मूल है।

15— यह राग—द्वेष ही सभी अनर्थों, दुखों की जड़ है।

16— किसी भी शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध के पीछे प्रीति नहीं हो तब राग नही होता और किसी भी विषय में प्रीति भी नहीं होती जब नित्य सुख स्वरूप चेतन आत्मा मं ही परम तृप्ति सन्तुष्टि को लेकर बुद्धि स्थिर हो जाती है।

17— बुद्धि की स्थिरता के लिए सन्त ने साधना बताई — शान्त होकर प्रत्येक क्रिया से नाम रूप से अपने को अलग देखते रहो।

18— चेतना ही सब रूपों में प्रगट हो रही है।

19— अपना कुछ भी न मानकर अपने ज्ञान स्वरूप में सन्तुष्ट रहो।

20— प्राप्त वस्तु तथा योग्यता और सामर्थ्य द्वारा निकटवर्ती जनों की आवश्यकता पूरी करते रहो। अपना संकल्प त्याग दो। वेतन स्वरूप ज्ञान को किसी मान्यता से आच्छादित न होने दो।

21— हम के साथ आत्मा, परमात्मा ही याद आता रहे। मन को चेतनमय देखो। देह को अपनी न मानो, अपना रूप न समझो, जानो और देखो कि मैं परमात्मा से भिन्न नहीं हूँ, जप, पूजा—पाठ में ही न अटके रहो।

22— आत्मा ही अहं के रूप में प्रगट हो रहा है। अहं के भीतर परम सत्य है ही, आकार तो ऊपर पहने हुए अथवा चेतना के ऊपर छाये हुए है। इन्हीं से ज्ञान दृष्टि ढकी हुई है।

23– जप, कीर्तन, पाठ आदि साधन सत्य से सम्बन्धानुभूति के लिए हैं लेकिन बुद्धि शुद्ध होनी चाहिए। सत्‌चिदानन्द स्वरूप परमात्मा अथवा सत् चेतन आत्मा निरन्तर है। अहंकार तथा बुद्धि एवं मन और इन्द्रियों में आत्मा की ही चेतना व्याप्त है।

24– ध्यान से देखने पर आश्चर्य होता है कि जो निरन्तर है वह भूला रहता है और जिसमें अन्तर है उसका स्मरण चलता रहता है।

25– भगवान ने कहा कि जो सत् चेतन आनन्द है वह तो स्मरण से ही सुलभ अनुभव होता है, लेकिन उसे ही सुलभ होता है जो अपने में भिन्न पदार्थ का स्मरण नहीं करता।

26– जिसका संयोग होता है वही अपने से भिन्न है, उसका वियोग निश्चित है। जो अपने से निरन्तर अभिन्न है उसका स्मरण ही नित्य योगानुभव है।

27– वर्तमान क्षण में, क्षण प्रकाशक सत् चेतन तत्त्व का स्मरण चलते रहना सावधान साधक के लिए निरन्तर सुलभ है। भगवान ने स्मरण से ही अपने को सुलभ बताया है। सत्याहं सुलभः।

28– जब तक देह से मोह है तब तक तुम यह कहीं न भूलो कि ज्ञान स्वरूप आत्मा चेतन परम पवित्र है। देह सदा अपवित्र है। देह को देखते ही चेतना याद रहे।

29– देखो! इस अहंकार के पीछे एक अनन्त सर्वदर्शी ज्ञान स्वरूप चेतन विद्यमान है।

30– ज्ञान को देहाकार न बनाओ। आकार का चिन्तन करते ही ज्ञान वदाकार बन जाता है। अहं ज्ञान में बुद्धि स्थिर हे इसके अलावा अन्य कोई प्रयास अनावश्यक है।

31– तन में, परिवार में, धन, भवन, भूमि में ममता रहते निर्विकार होना सम्भव नहीं है। ममता–आसक्ति–कामना रहित होने पर ही प्रेम प्रगट होता है।

32– जो दूसरों को दुःखदाता मानता है उसके दुःख का अन्त नहीं होता। वह पराधीन रहता है।

33– स्वाधीनता–प्राप्ति में कोई श्रम नहीं है। ममता–त्याग के लिए किसी अन्य की आवश्यकता नहीं है। ममता रहते पराधीनता नहीं मिटती।

34– चिन्तन से ही सत् की प्राप्ति और कर्म से असत् की प्राप्ति होती है।

35– सन्त समझाते हैं कि ममता से मुक्त होना है तब तो जीवन में जो कुछ भी मिला है उसे अपना न मानकर परम प्रभु की माया जान कर समग्र प्रेम चेतन प्रभु में ही लगाते रहो।

36– यह निश्चय दृढ़ कर लो कि हम परमात्मा में हैं, जो कुछ अपना प्रतीत होता है यह सब परमात्मा का ही है। अपना कुछ भी नहीं है और अब परमप्रभु के अतिरिक्त संसार में अपने को कुछ भी नहीं चाहिए। इन

वाक्यों को कभी–कभी कह लेना, मनन करना कठिन नहीं है परन्तु बुद्धि में निश्चय दृढ़ होना कठिन है, क्योंकि प्रीति सुखासक्ति में फँसी है और ज्ञान विनाशी वस्तुओं एवं व्यक्तियों की ममता से ढका है।

37– जो सत् चित आनन्द स्वरूप निरन्तर है वह अपना नहीं दीखता और जो तन–धन–जन आदि मिला है वह अपना प्रतीत होता है यह सर्वोपरि दोष है।

38– विनाशी जड़ देहों में प्रकाशित अविनाशी चेतन के अतिरिक्त कुछ चाहना काम है।

39– अप्राप्त की कामना काम है।

40– परमात्मा प्रेम स्वरूप है, जिससे प्रेम है वह पदार्थ है। पदार्थों को चाहने वाला अहंकार परमात्मा से विमुख रहता है, क्योंकि कामी है।

41– आत्मा–परमात्मा के बीच में चेतना अहंकामय है। अहंकार ही कर्ता–भोक्ता बनता है।

42– सन्त समझते हैं कि परमात्मा में ही अहं की अनुभूति रहना सत्योपासना है। जहाँ श्रम है वहाँ वासना है।

43– क्षण–क्षण के पीछे परमात्मा की सत्ता का अनुभव करो। इतना सजग रहो कि बार–बार पल–पल के पीछे आनन्दमय परमात्मा का स्मरण होता ही रहे। परमात्मा ही सर्वाश्रय है।

44– काँटे और फूल को एक ही रस से पुष्ट होते देखना समत्व योग है। चेतना में बुद्धि ठहरने पर ही समत्व योग सिद्ध होता है।

45– सत्संग में सत् चर्चा सुनते हुए यह जान लेना है कि जो नित्य है निरन्तर है वही सत् है, इस सत् को कहीं खोजने नहीं जाना है।

46– यह सत् चेतन आत्मा खोजने वाले अहंकार में ही विराजमान है, यह सभी में सब ओर व्यापक है।

47– देखो! अपने होने का ज्ञान किसे नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि हम नहीं हैं।

48– जिस प्रकार तरंग सागर से भिन्न नहीं हो सकती उसी प्रकार अनन्त चेतन से अहं ज्ञान भिन्न नहीं हो सकता। इस अहं ज्ञान में बुद्धि को स्थिर करना–यही सत्संग है। विनाशी नाम रूप में अविनाशी चेतन ज्ञान स्वरूप आत्मा की अनुभूति ही सत्संग है।

49– भगवान ने अपना पता बतलाया है–अहं आत्मा, अहमात्मा का स्मरण, निरन्तर सुलभ भगवान का ही स्मरण है।

50– चेतन आत्मा निरन्तर प्राप्त ही है, इस चैतन्य में ही विश्राम करो। नित्य सुलभ स्वरूप चेतन स्वरूप को भूलकर बाहरी रूप से प्रीति करके मोहित न बनो।

51— सब ाम—रूपों के प्रकाशक परमात्मा को जानकर मन ही मन प्रणाम करो। तुम जितना ही शून्य—शान्त हरोगे उतना ही कृपा, अनुकम्पा की वर्षा का अनुभव होगा।

52— जब तुम कुछ न बनोगे, कुछ न चाहोगे और कुछ न करोगे तब नित्य प्राप्त प्रभु की अनुभूति होगी क्योंकि यह तो है ही, इसी में हम सब हैं।

53— यह भी सद्गुरू सन्मति है कि तुम कभी—कभी उत्तेजित, कामना, अथवा क्रोध के वेगों से संघर्ष करो, इनकी दिशा बदल दो।

54— जो अधोमुखी शक्ति काममय है वही ाममय हो सकती है। जो शक्ति क्रोधमय है वह प्रेम के सहारे क्षमामय हो जाती है। जो ममता विनाशी नाम रूप में है वह ममता अविनाशी सतत्त्व में बदल जाती है। जिस प्रीति के योग से जड़ देह सुन्दर प्रतीत होती है उसी प्रीति को चेतन आत्मा में स्थिर करते हुए सदा रहने वाले आनन्द का अनुभव किया जा सकता है, क्योंकि वेतन सत्ता के द्वारा ही प्रत्येक पदार्थ में सौन्दर्य प्रतिभासित होता है। काम, क्रोध, मद, मोह के भोक्ता न बनकर ध्यान से देखते हुए दृष्टा होना है। धैर्य धारण करते हुए देखना सम्भव है।

55— ज्ञानी, ध्यान से देखते हुए काम—क्रोधादि वेगों से मुक्त होता है। अज्ञानी सुखासक्तिवश पराधीन रहता है।

56— हम जिसे चाहते हैं उसी के आधीन होते हैं। चाह—रहित होने पर इन्द्रियों के विश्राम से मन में संकल्प शक्ति संचित होती है।

57— मन के विश्राम से बुद्धि में विचार करने की शक्ति बढ़ती है।

58— बुद्धि के विश्राम से अहंकार में ज्ञान देखने का विवेक बल प्राप्त होता है।

59— जब किसी रूप में तथा किसी मधुर शब्दों में गति गायन सुनने में अथवा किसी स्वाद में या स्पर्ष में प्रीतिपूर्वक आसक्ति नहीं रहती तब इन्द्रियों को विश्राम मिलता है।

60— मन जब किसी विषय में सुखासक्त नहीं रहता तब मन को विश्राम मिलता है।

61— बुद्धि जब मन के पीछे नहीं चलती तब संयोग वियोग आदि द्वन्द्वों के पार, योग में स्थिर होती है।

62— मानना और मनन करना जब समाप्त होता है तब मनातीत ध्यान का आरम्भ होता है।

63— चेतना जब मनोमय कोष के पार विज्ञानमय कोष में पुहुँचती है तब ध्यान में आत्मज्ञान होता है।

64— मिली हुई देहादिक वस्तुओं को अपनी न मानो, क्योंकि किसी पर स्वतंत्र अधिकार नहीं है।

65— ज्ञान ही देहमय है, प्राणमय है, मनोमय है, विज्ञानमय है, आनन्दमय है। चेतन ज्ञान ही गुणमय है, दोषमय है। ध्यान से देखने पर ज्ञान ही सर्वमय है।

66—